ॐ

# राम संदेश

भक्ति, ज्ञान एवं कर्मयोग की आध्यात्मिक पत्रिका

पावन हों शिक्षा संस्कार
शुद्ध आचरण का आधार

काम काज हो या व्यापार
सभी जगह अच्छा व्यवहार

मित्र पड़ोसी घर परिवार
संबंधों में निश्छल प्यार

यदि हो पाएं तो संसार में
होगा सुख शांति प्रसार

वर्ष 61 | अप्रैल–जून 2015 | अंक 2

रामाश्रम सत्संग, गाज़ियाबाद

# विषय सूची


| क्रमांक | | | पृष्ठ |
|---|---|---|---|
| 1. | भजन | *मीराबाई* | 01 |
| 2. | आध्यात्म विद्या का सार (भाग-9) | *लालाजी महाराज* | 02 |
| 3. | संत-वाणी | *डा. श्रीकृष्णलाल जी महाराज* | 06 |
| 4. | प्रेम व दीनता | *अनमोल वचन* | 09 |
| 5. | दुःख सुख दोनों | *डा. करतार सिंह जी महाराज* | 11 |
| 6. | मुस्लिम संतों के जीवन चरित्र | | 17 |
| 7. | अभ्यास में मन न लगने के कारण और उपाय | | 23 |
| 8. | जीवन प्रभात | | 30 |
| 9. | भंडारों में अदब व सेवा भाव | | 31 |

# राम ॐ संदेश

संस्थापक

ब्रह्मलीन परमसंत डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज

संरक्षक

ब्रह्मलीन परमसंत डॉ. करतार सिंह जी

सम्पादक

डॉ. शक्ति कुमार सक्सेना

(सर्वोच्च आचार्य एवं अध्यक्ष)

वर्ष 61 अप्रैल–जून 2015 अंक–2


## गुरु रैदास की स्तुति : मीराबाई

भाग भला रे ज्यां घर सत्गुरु आवै।
ओ संताँ रो समागम म्हाने नित भावै।।

नारद पूछै हरजी बसो थे कठै छो।
नहीं मैं बैकुण्ठां म्हानै जठे ध्यावै।।

गवां भी जावै जिनड़ा, जमाना भी जावै।
तिरगुनी माया में, मनड़ो हरसावै।।

अड़सठ तीरथ जिवड़ा घट मांही न्हावै।
संतां री सरणं में गंगा सामी आवै।।

गुरु रविदास म्हानै, मिल गया पूरा।
संतां रो बधावो, बाई मीरा गावै।।

*परमसंत महात्मा रामचन्द्र जी महाराज*

# अध्यात्म विद्या का सार

## मारफ़त (ज्ञान) की व्याख्या

मारफ़त के इस राज़ की समझ कैसे आये? इसको किस तरीके पर समझना चाहते हो? हिकमत से या फ़िलसफ़ा से या साइन्स से, ताकि समझाने की कोशिश की जाये।

सबसे पहले अपनी तरफ़ नज़र करनी चाहिए। अपने जिस्म को देखो, वह छोटी कायनात (दुनियां) है। इसमें कितने नस नाड़ियां, कितने रग व रेशे, खून व चर्बी, कितने गोश्त व पोस्त (खाल) मौजूद हैं। कसरत फैलाव या (बहुतायत) है, इससे कौन इंकार कर सकता है। मगर सब आपस में गुंथे हुए हैं और यह गुंथना तौहीद और एकपना कहलाता है। और आगे ही देखो, एड़ी से चोटी तक तुम सिर्फ़ एक हो, इसमें कोई दूसरा नहीं है। गोश्त पोस्त वगैरा सब तुम में है और वही तुम हो। देखों एक है कि नहीं। यही तौहीद है।

***"हमाओस्त व हमाअज़ोस्त"*** की मिसाल (उदाहरण) देखो : समुद्र में पानी, मोती, मूंगा, लहर, मछली व शंख सभी कुछ हैं। इन्ही की एकजा (सम्मिलित) हैसियत का नाम समुद्र है। किसी एक को या सबको अलग–अलग कर लो तब समुद्र कहाँ रहा? एक में बहुत और बहुत में एक का तमाशा था। वह दूर हो गया अब समुद्र नहीं रहा। समुद्र वहदत (एक) है और बाक़ी सब चीज़ कसरत (अनेक) है। इस तरह की और भी मिसालें दी जा सकती हैं।

अब साइन्स क्या कहती है यह भी सुन लो। चीज एक है, कीमिया के अमल से उसमें हज़ारों सूरतें पैदा हो गयीं। पानी में हरकत व

हिलोर हुई, झाग आ गया। झाग सूखा तो मिट्टी बन गयी। मिट्टी से पेड़, पत्थर, इंसान (मनुष्य) हैवान (पशु) सब बन गये। मिट्टी के अजज़ा (अंगों) को हल कर (मिला) दो। अब सिवाय पानी के क्या रहा। द्वैतवादी झगड़ालू, झगड़ा करने वाले व शरीर (उपद्रवी) हैं। मुवाहिद (अद्वैतवादी) अच्छा है। इससे किसी का झगड़ा नहीं रहता न वह बहस व मुबाहिसे (वाद–विवाद) में पड़ता है। जो समझ लिया वहीं सब कुछ है।

खुद अपनी ज़िन्दगी के रोज़ाना बरतावे को देखो। तुमको अपने से छोटे कमअक्ल आदमियों से नफ़रत (घृणा) थी। तुमने सोचा कि ऐसे आदमियों के साथ रहना सहना पड़ेगा। अपने हालात को उनके हालात के साथ मिला दिया। निगाह ऊँची होते ही नफ़रत का फ़र्क कम होने लगा। तुम उन जैसे और वे तुम जैसे बनने लगे। अब न वह नफ़रत है न कदूरत (दुराव) है। तुम उनकी कमज़ोरियों को दया और क्षमा की निगाह से देखते हो। वे तुमको प्यार करते हैं, तुम्हारी इज्ज़त करते हैं। अब तुम भी खुश वह भी खुश क्योंकि खुशी एकपने व वहदत में है। नाजिन्सियत (ग़ैरपना) झगड़े की जड़ है। हमजिनन्यित (जातिवाचकता) हृदय की हालत है और यही तौहीद है। इसी की सबको ख़्वाहिश होती हैं। तौहीद का मसला समझा दिया अब फिर वही मज़हबी उधेड़बुन की तरफ़ चलने का ख़्याल है क्योंकि निगाह का नुक़्ता (दृष्टिकोण) वहीं है जो कभी नज़र से ग़ायब नहीं होता और ग़ायब भी कैसे हो? रात दिन वही अमल और शग़ल रहता है और उसी के मुताबिक जज़बात (भावनायें) पैदा किये जा रहे हैं। इसलिये अगर्चे मिसाल कई क़िस्म की दी जाती है, मगर नज़र सिर्फ़ उसी तरफ़ रहती है।

तौहीद के उस्तादो (गुरुओं) ने इसकी कई किस्में की है। तकसीम (विभाजन) और तरतीब (एकत्रित करना) कुदरत ख़ास्सा प्रकृति का (स्वभाव) है। अगर कोई ताहीद की भी क़िस्में मुकर्रिर (निर्धारित) करता है तो हमें एतराज (आपत्ति) क्यों होना चाहिए। जो जैसा है

और जैसी जिसकी समझ है वैसा ही कहेगा, और करता रहेगा, पर मेरे ख़्याल से तौहीद में इख़्तिलाफ़ात (प्रतिकूल भाव) दिखाना बेकार है क्योंकि जब उसकी किस्में हो गयीं तो फिर उसमें तौहीद कहाँ रही ? वह तो भानुमती का पिटारा बन गयी जिसमें सभी तरह की कई चीजें मौजूद है।

मुसलमान सूफ़ियों ने चार किस्में बतायी हैं :–

1) **तौहीद (एकपना) शरई** धर्मशास्त्र के अनुसार कर्मकाण्ड) यानी खुदा (परमेश्वर) की वहदत (एकपना) का क़ायल होना और उसको अपने से कदीम (पुराना) समझना और अपने आँख, कान व कलाम (वचन) से आँख कान व बोलने वाला जानना।
2) **तौहीद तरीक़त** (उपासना) – इसकी फिर दो किस्में हैं –
   अ) **मौहीद अफ़ाली** यानी जुमला मौजूदात को अफ़ाल–खुदा (ईश्वर का किया हुआ) (कर्म) समझना।
   ब) **तौहीद सिफ़ाती** यानी जुमला मौजूदात को सिफ़ात–बारी (ईश्वर के गुण सहित) ख़्याल करना।
3) **तौहीद ज़ाती** यानी सबको खुदा की ज़ात का मानना।
4) **तौहीद हक़ीक़त** यानी उसमें अपने आपको बिल्कुल महब (लय) कर देना।

हक़ीक़त (वास्तव) में यह मरहले (समस्या) कुछ नहीं। सूफ़ियों की तौहीद की चार किस्में हो गयीं वैसी ही हिन्दुओं की पुरानी तौहीद इसी तरह के चार रूप बताती है।

(1) सालोक्य (2) सामीप्य (3) सारूप्य (4) सायुज्य।

इसको लोग मुक्ति के दर्जे बतलाते हैं मगर तौहीद भी तो एक तरह की मुक्ति ही है। दो की कैद या बंद से छूटकर एक में आ जाना ही मुक्ति है। इनकी तशरीह (व्याख्या) इस तरह समझें :–

(1) सालोक्य यानी ईश्वर के लोक में दाख़िल होना।
(2) सामीप्य यानी ईश्वर के पास पहुंचना।
(3) सारूप्य यानी ईश्वर के रूप में दाख़िल होना।

(4) सायुज्य यानी ईश्वर के (निज धाम) में लय होना।

यह सब मरहले (समस्यायें) हैं और कुछ नहीं। अब इरफ़ान (ज्ञान) की उस बात की तरफ ग़ौर करना चाहिये जिसमें पत्थर काटने वाले और मूर्ति बनाने वाले की मिसाल दी गयी है। मूर्ति बनाने वाले ने अपने दिल के पर्दे फाड़े और उस जौहर (कला–कौशल) को देखा जिससे ख़ूबसूरती की पुतलियां हथौड़े के ज़रिये पत्थर से निकाली हुई ख़ूबसूरती में नज़र आती है। उसने इस जौहर को पहिचाना और समझ लिया कि यह मेरे दिल के पर्दे के भीतर है और मेरी ही ज़ात (व्यक्तित्व) हैं। फिर उसने क्या किया? उसमें ठहरने, उसमें एक होकर रहने का यत्न किया। समुद्र से लहरें निकलीं और फिर उसी में समा गयीं। यह उसकी तौहीद है और तौहीद भी सच्ची और असली। वह दूसरी जगह जहाँ और किसको तलाश करता?

तलब (जिज्ञासा), इश्क़ (उपासना) और मारफ़त (ज्ञान) की मंजिलों को तय करता गया और अपनी ही में हक़ीकत और बवदानियत सत्य, वहदत, एकता एकपन का तमाश देखा और उससे मिलकर एक हो रहा। सोचो यह तौहीद हुई या नहीं? कबीर साहब कहते हैं–

***गुरु मिल तब जानिये मिटे मोह तन ताप।***
***हर्ष शोक व्यापै नहीं तब गुरु आपै आप।।***

चेला गुरु से मिलकर एक हो गया। गुरु उसमें और वह गुरु में है। जुदाई का पर्दा हट गया। यह महवियत (सुन्न) का स्थान है। तीसरा तिल तलब का मैदान था, सहसदल–कंवल में इश्क़ का; अब सुन्न में तौहीद और वहदत का निशान है। जो गुरु अब तक तीसरे तिल के अभ्यास के वक़्त बाहर नज़र आता है उसी का ज्ञान और उसी का दर्शन त्रिकुटी में हुआ।अब सुन्न में वह हमारे ही अन्दर है।

देना सीखो, तन दो, मन दो सब कुछ दे दो, तब यह गुरु मिलेंगे। तन मन धन सब गुरु के अर्पण करने से पहले गुरु नहीं मिलते। उसी असल बात को समझो यही असल भेद है।

❐❐❐

*प्रवचन गुरुदेवः डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज*

# सन्त वाणी

आत्मा का आनन्द ऐसा आनन्द है कि जिसने एक बार उसका अनुभव कर लिया, वह उसको कभी भी नहीं भूल सकता। यह ज़रूर है कि अपने संस्कारों के अनुसार अभ्यासी दुनियाँ की वासनाओं में फँस जाता है। लेकिन यह आत्म अनुभव और उसका आनन्द उसको ज़्यादा देर वहाँ ठहरने नहीं देता और भोगों का ज़ोर कम हो जाने पर फिर अपने इष्ट की तरफ चलने लगता है। इसी तरह आत्मा धीरे–धीरे सभी चीज़ों से उपराम होकर अपने प्रीतम के चरणों में पहुँच जाती है और मन हमेशा के लिए शान्त हो जाता है।यह ज़रूर है कि जब तक मन जगत की इच्छाओं से उपराम नहीं होता, आत्मा को परमात्मा की शरण नहीं मिलती और वह इन्द्रिओं के भोगों में फँसती रहती है। यह रास्ता बहुत सुगम व सफल है, लेकिन इसमें गुरु व शिष्य दोनों में दो बातों का होना बहुत ज़रूरी है। :–

**गुरु**

1. गुरु सच्चा हो यानी जिसने परमात्मा के चरणों में हमेशा के लिए जगह पा ली हो।
2. वह बेगरज़ हो यानी शिष्य की आत्मिक उन्नति के सिवाय कुछ न चाहता हो।

**शिष्य**

1. शिष्य को यह पक्का विश्वास हो कि जो कुछ गुरु कहता है उसी पर चलने में उसकी भलाई है, चाहे सख्ती हो या नरमी। दोनों अवस्थायों में गुरु में दृढ़ विश्वास रखे।
2. उसकी गुरु में सच्ची प्रीति हो यानी उसके हृदय में सिवाय गुरु के प्रेम के कोई दूसरी चाह न हो और यदि हो भी तो वह सिर्फ अपने उद्धार की। गुरु में अपने आपको पूर्ण रूप से समर्पण और लय कर चुका हो। जितनी कमी इन दोनों बातों में होगी उतनी ही देर आत्मा के साक्षात्कार में लगेगी।

हमारे यहाँ जो तरीका है जो यहाँ बरता जाता है और जिसकी नींव कृपा करके बुज़ुर्गों ने डाली है, उसमें आत्म दर्शन पहले होता है और

आचरण बाद में सुधरता है। फिर परमात्मा की नजदीकी (सामीप्य) हासिल करने के अतिरिक्त कोई कामना शेष नहीं रहती।

''अव्वले माँ आखिरे हर मुनतहीस्त।
आखिरे माँ जेब तमन्ना तहीस्त।''

**भावार्थः–** हमारा प्रारम्भ वहाँ से होता है जहाँ औरों का अभ्यास समाप्त होता है। हमारा अंत वहाँ है जहाँ तमन्ना की जेब खाली हो जाती है।

सन्तों की वाणी अनुभव की वाणी होती है। मेरा निजी तर्जुबा है कि जो कुछ सन्तों ने अपनी वाणी में लिखा है वह एक–एक बात सही है। उस पर अविश्वास मत करो। पहले अपने अन्तर को शुद्ध करो, तब सब बातें ठीक लगने लगेंगी।

अन्तर को शुद्ध करने के लिए पहले अपने इख़लाक (सदाचार, आचरण) की सफाई की ज़रूरत है। इख़लाक क्या है? तुम्हारे मन की वृत्तियाँ जो तुम्हें माया में फँसा देती हैं, उनसे अपने आपको अलहदा करना और उन्हें सत् की तरफ मोड़ना, बुराई से भलाई पर आना और फिर भलाई स्वभाव बन जाना। दुनियाँ में जो चीज़ें दीख रही हैं, वह सब माया है, जो उसमें लुभाव है वही मन है। मन, बुद्धि को साथ लेकर इन्द्रियों के द्वारा हमें दुनियाँ में फँसाता है। इन्द्रियों को विषयों से बचाओ, बुद्धि के कहने में मत चलो। मैंने अपने तजुर्बे से देखा है कि जहाँ मैंने गुरु का कहना नहीं माना वहीं धोखा खाया। मेरी जिन्दगी का तुम भी फायदा उठाओ। गुरु के कहने पर सख्ती से चलो।

हम अपनी इन्द्रियों को रोकें, इसका मतलब यह नहीं के इन्द्रियों का इस्तमाल ही न करें। उनका धर्मशास्त्र के मुताबिक इस्तमाल करें। उन्हें regulate (सन्तुलित) करें। काम, क्रोध वगैरह का इस्तमाल बहुत sparingly (यदाकदा) करें। धर्मशास्त्र के अनुसार उनका इस्तमाल करेंगे तो उनमें फँसेंगे नहीं।

सच्चाई पर चलो, सन्तों के कहने पर चलो। जो मन के कहने पर चला, वह दीन से भी गया और दुनियाँ से भी। दो जन्म बेकार गये। इसलिए गुरु के कहने पर चलो। जितना मुझसे हो सका मैंने किया लेकिन पूरे तौर पर गुरु की पैरवी न कर सका।

आप लोगों को यही नसीहत है कि जो मुझसे प्रेम करते हैं वे इन्द्रियों से बचें। सबसे बड़ा दुश्मन मन है, जो हर कदम पर धोखा देता है। यही

शैतान या माया का बड़ा भारी हथियार है जो जीव को बहका कर ग़लत काम कराता है। अगर गुरु के कहने पर चलोगे, उसकी बात मानोगे तो मन के चँगुल से छूट जाओगे। इसलिए अपने गुरु के बताये हुए रास्ते पर क़ायम रहो, परमात्मा पर भरोसा रखो और धर्मशास्त्र के मुताबिक दुनियाँ के व्यवहार करो। अपना आचरण सुधारो और राज़ी–ब–रज़ा रहो। अपने लक्ष्य तक आसानी से पहुँच जाओगे। (20–10–1961)

●●●●

# प्रेम जीवन का ध्येय बनना चाहिए

भगवान महावीर उद्यान में अ ोक वृक्ष के नीचे विराजमान थे। उनके सत्संग और द ान के लिए आए अनेक राजा बैठे हुए थे। साधारण परिवारों के श्रद्धालुजन भी उनका दिव्य उपदे ा सुनने के लिए लालायित थे।

भगवान महावीर ने कहा, पृथ्वी प्रेम का मंदिर है। इसे हिंसा, राग, द्वेश जैसे दुर्गुणों से अपवित्र नहीं करना चाहिए। यह जान लो कि कामनाओं का कभी अंत नहीं होता। एक जन्म में तमाम कामनाओं की पूर्ति असंभव है। अतः कामनाओं पर नियंत्रण अति आव यक है। कुछ क्षण रुककर महावीर ने पुनः कहा, यदि सच्चा सुख और भाांति चाहते हो, तो निर्बलों और असहायों की सेवा–सहायता करो, इससे बढ़कर श्रेश्ठ कर्म दूसरा नहीं है। प्राणी मात्र का दुख देखकर दुखी होने वाला ही सच्चा मानव है। हिंसक कर्म एवं कूटवाणी से सुख की जगह दुख व अ ाांति बढ़ती है। प्रेम व अहिंसा से ही संसार को व ा में किया जा सकता है। उदार और प्रेमी बनो। प्रेम हमारे जीवन का ध्येय बनना चाहिए।

अहिंसा, अपरिग्रह और संयम इन्हें अपनाने से ही सबका कल्याण होगा। अपरिग्रह, सुख–साधन, संपत्ति और वैभव को मर्यादित करने का स ाक्त साधन है। सारे जगत के वैभवों से भी मनुश्य की तृप्ति नहीं हो सकती, यह जान लो। सभी महावीर के अमृत तुल्य उपदे ा सुनकर गद्‌गद् थे। अनेकों लोगों ने उसी समय उनके उपदे ाों का पालन करने का संकल्प लिया।

*परमसंत डा. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज के अनमोल वचन*

# प्रेम व दीनता

❖ यह युग भक्ति और प्रेम का है जो बिना दीन बने नहीं आ सकती। यदि सच्ची चाह मालिक से मिलने की और उसके दर्शन प्राप्त करने की होगी तो सच्ची दीनता भी आवेगी और उससे परमार्थ की कार्यवाही सुगमता से बन पड़ेगी।

❖ जब निरन्तर प्रेम से गुरु और शिष्य के बीच सम्बन्ध स्थापित हो जाता है तो एक के विचार दूसरे के ऊपर उतर जाते हैं। गुरु रूप में परमात्मा आकर हमारी सहायता करता है। मगर शर्त यह है कि प्रेम सच्चा हो, कोई ग़रज़ (स्वार्थ) न हो और अगर ग़रज़ भी हो तो प्रेम पाने की ख़्वाहिश हो। गुरु का प्रेम ही ईश्वर प्रेम में बदल जाता है।

❖ प्रेम की और गुरु से नाता जुड़ने की पहचान यह है कि जो ख़्याल गुरु के दिल में पैदा हो वह शिष्य पर उतर जाय। फिर उस ख़्याल को ख़त के जरिए या मिलने पर confirm (पुष्टि) कर लें। इसका मतलब यह है कि शिष्य का निजी रूप जाग्रत अवस्था में आ गया है और गुरु की तालीम (शिक्षा) क़बूल कर रहा है।

❖ तुम अपने से पूछो कि ईश्वर या गुरु को क्यों प्यार करते हो? जवाब मिले कि 'हम नहीं जानते'। पूछो कि क्या चाहते हो? और जवाब मिले कि 'कुछ नहीं चाहते' यही सच्चा प्रेम है।

❖ सच्चा प्रेम वह है जिसकी वजह समझ में न आये लेकिन बग़ैर उसके रह भी न सके। तू न सही तेरा ख़्याल ही सही।

❖ उत्तम दीनता यह है कि संसार से दुःखी होकर उसे छोड़ना चाहे।

❖ मन का प्रेम बदला चाहता है और बदलता रहता है। हम ईश्वर से प्रेम इसलिए करते हैं कि हमारी दुनियाँ की ख़्वाहिशें पूरी हों,

हमें दुनियाँ में धन, सम्पत्ति, ऐशो–आराम मिले। यह मन का प्रेम है। आत्मा का प्रेम बदला नहीं चाहता, जाँनिसारी (आत्म बलिदान, जीजान से न्यौछावर हो जाना) चाहता है। सब कुछ दे देना चाहता है लेकिन लेना कुछ नहीं चाहता। यह प्राकृतिक प्रेम है, जो अंश को अंशी से होता है। अर्थात् आत्मा परमात्मा की अंश है और इस नाते वह अपने अंशी से स्वाभाविक प्रेम करती है। मन के प्रेम की एक पहचान यह भी है कि वह जिसे प्रेम करता है उसे किसी दूसरे को प्रेम करता नहीं देख सकता।

❖ जो आदमी बिना स्वार्थ के प्यार करता है, अपने बेटे–बेटी और दूसरे के बेटे–बेटी को बिना distinction (भेदभाव) के सबको एक सा प्यार करता है, कोई फ़र्क नहीं समझता और जिसका प्यार जीव–जन्तुओं, वनस्पतियों इत्यादि सबके लिए समान है, उसी के दिल में परमेश्वर बसता है। यही प्यार ईश्वरीय कहलाता है, यही Universal love (विश्वव्यापी प्रेम) है।

⌘⌘⌘

## अनमोल वचन

बिना ईश्वर–कृपा के गुरु नहीं मिलता और बिना गुरु–कृपा के ईश्वर नहीं मिलता। एक सत्पुरुष है, दूसरा सत्गुरु है। दोनों में 'सत्' है। एक निराकार है दूसरा साकार है। साकार के ज़रिये (माध्यम) से ही निराकार को जाना जाता है। एक असल है दूसरा उसके पाने का ज़रिया। बिना गुरु के ईश्वर को प्राप्त कर ले यह नामुमकिन है। गुरु का ध्यान करो और निराकार का चिन्तन करो।

*–परम सन्त डा. श्रीकृष्णलाल जी*

(दि. 10. 5. 1969)

*प्रवचनः परमसंत डा. करतार सिंह जी साहब*

# दुःख सुख दोनों सम कर जानो....

'रामनवमी' बड़ा पवित्र दिन है। इस दिन को भगवान राम के जन्मदिन के रूप में मनाया जाता है। भारत में भगवान राम के नाम को अत्यन्त पवित्र माना जाता है और सब लोग भगवान राम की पूजा करते हैं, राम भजन करते हैं। हमें देखना है कि भगवान राम में ऐसी कौन सी विशेषतायें थी जिसके परिणामस्वरूप उन्हें पूजा जाता है।

भगवान शिव के जीवन का अध्धयन करें तो हम पायेंगे कि वे सदा आत्मस्थित रहते हैं। उनमें मन की चंचलता नहीं है, वे राग–द्वेष से मुक्त हैं। इसी प्रकार जन्म से ही भगवान राम के गुणों का संसार को अनुभव होने लगा था। वे बचपन से ही अधिकांश समय महान योगी श्री वशिष्ठ जी के चरणों में रहे। वशिष्ठ जी ने भगवान राम को उपदेश दिया और कथायें सुनाईं। वे उपदेश व कथा 'योग वशिष्ठ' नामक पुस्तक में अंकित हैं। बड़ी ऊँची पुस्तक है, इसे पढ़ना चाहिए। इस पुस्तक में ज्ञान साधना को बहुत महत्व दिया गया है।

ज्ञान साधना की मुख्य बातें संक्षिप्त में निवेदन कर दूँ। प्रत्येक मनुष्य के भीतर में आत्मा है, परमात्मा है। परन्तु सबको न तो अपने स्वरूप की अनुभूति होती है न बुद्धि ही उसको जानती है। हम सब पाँच शरीर तन, मन, बुद्धि, चित्त व अहंकार आदि में लिप्त हैं। महर्षि वशिष्ठ ने भगवान राम को प्रेरणा दी कि तुम यह शरीर नहीं, प्राण नहीं, मन नहीं, अहंकार नहीं हो, तुम परमात्मा स्वरूप हो, आत्मा हो। उनका पूरा जीवन ही अनुभूतिमय था। आत्मा के अतिरिक्त किसी विषय में वे फँसे नहीं। ऐसा महान गुण शायद ही साहित्य में कहीं मिलता हो। राम जो रमे हुए हैं, सर्वव्यापक हैं।

यह बाल्यावस्था थी जब उन्होंने गुरु वशिष्ठ जी से परमात्मा और आत्मा के गुणों को प्राप्त किया था, तब भी उनमें अत्यन्त सरलता थी। सरलता किसमें होती है? जिस व्यक्ति पर बुराई–भलाई, राग–द्वेष कोई अपना प्रभाव नहीं डाल सकते। वे दुःख–सुख दोनों में ही आनन्दित रहते थे। प्रसन्नता व आनन्द में अंतर है। प्रसन्नता मानवता का स्वरूप है व आनन्द आत्मा का। हम रामायण पढ़ते हैं, हर साल रावण को जलाते हैं, दशहरा मनाते हैं किन्तु इस महापुरुष भगवान राम के जीवन का अनुसरण नहीं करते। इस दिन हम व्रत भी रखते हैं। व्रत का अर्थ है– दृढ़ संकल्प। आज के दिन दृढ़ संकल्प लेना चाहिए कि जब तक यह बुराई दूर नहीं हो जायेगी हम खाना नहीं खायेंगे। किन्तु हम ऐसा करते नहीं। शाम को व्रत तोड़ने के बाद अच्छे–अच्छे पकवान खाते हैं, जबान के रस में फँस जाते हैं। यह व्रत नहीं है। व्रत का अर्थ है स्वनिरीक्षण करना, अपने अंदर जो कमियाँ हैं, कमजोरियाँ हैं, एक–एक कर उन्हें देखना और उनसे मुक्त होना। बुराईयों से मुक्त होने के साहस को व्रत कहते हैं। हमें दृढ़ संकल्प लेना होगा कि कभी झूठ नहीं बोलेंगे, चाहे कितना भी समय लगे इस आदत से छुटकारा पाकर ही रहेंगे। कोई मुझे कितनी भी गालियाँ दे, मैं प्रभवित नहीं होऊँगा। जो लोग व्रत रखते हैं मैं उनकी प्रतिक्रिया नहीं कर रहा, केवल अपने विचार बता रहा हूँ। वशिष्ठ जी का जो भाव था वह बता रहा हूँ।

वशिष्ठ जी के पास कामधेनु गाय थी। कामधेनु गाय से जो वस्तु माँगो वह मिल जाती है। महर्षि विश्वामित्र जी उनके पास आये और वह गाय माँगी। वशिष्ठ जी ने गाय देने से इन्कार कर दिया। विश्वामित्र जी जिद्दी थे, उन्होंने वशिष्ठ जी के सौ पुत्रों को मार डाला। वशिष्ठ जी जो समतुल्य थे, उनमें तनिक भी अंतर नहीं आया। किसी की एक संतान चली जाती है तो सारा परिवार रोता है। लेकिन वशिष्ठ जी के सौ पुत्र उनके सामने मारे गये, किन्तु उनकी समता में कोई अन्तर नहीं आया। साधना का सार यही है।

'दुःख सुख दोनों सम कर जानो, यह गुरु ज्ञान बतायो।
कहु नानक बिन आपा चीन्हें, मिटे न भ्रम की काई।।'

जब तक जिज्ञासु के अन्दर का अहंकार खत्म नहीं होगा वह सुख–दुख से मुक्त नहीं हो सकता। हम सब द्वन्दों में फँसे हैं, इसी कारण हम सम अवस्था में नहीं पहुँच पाते और दुःखी रहते हैं। इसके बिना कोई भी साधना सफल नहीं मानी जायेगी। चाहे वह किसी भी धर्म की हो।

सुख–दुःख, आशा–निराशा सबमें आपका चित्त एक सम रहे। साधना केवल आँख बन्द करना ही नहीं है, यह तो प्रथम संवेदना का साधन है। आप ग्रेजुएट नहीं बन सकते, आपको पी.एच.डी की डिग्री नहीं मिल सकती। कोई सन्त नहीं दे सकता, जब तक आप में सत्यता नहीं आती। इस गुण में कभी विक्षिप्ता नहीं आनी चाहिए। यह आपका सहज स्वभाव बन जाना चाहिए।

भगवान राम के जीवन में ऐसी कई घटनायें आयीं। वे कौशल्या के पुत्र हैं, सन्तानों में श्रेष्ठ हैं। पिता ने कहा 'अमुक तिथि पर राम को राजगद्दी पर विराजमान किया जाए।' कैकेई के मन में ईर्ष्या उत्पन्न हुई। राम को चौदह वर्ष के लिए वनवास दे दिया गया। राजा दशरथ जो साधारण व्यक्ति नहीं थे, वे भी विक्षिप्त हो गये, व्याकुल हो गये। माता कौशल्या के भी दुःख का कोई ठिकाना नहीं रहा। बाकी छोटे भाई भी नाराज हो गये। केवल राम ही दृढ़ संकल्पी थे, उन्होंने पिता से कहा 'आपने जो वचन दिया है, उसे पूरा करें, क्षत्रिय धर्म का पालन करें।' उन्होंने लक्ष्मण जी व सीताजी को साथ लिया और चौदह वर्ष के लिए जंगल में चले गये। भरत चौदह वर्ष तक राजगद्दी पर नहीं बैठे। भगवान राम की खड़ाऊँ सामने रखकर उसकी पूजा करते रहे। मैं सब बातें संक्षिप्त में कह रहा हूँ। कहने का तात्पर्य यह है कि परिवार में राम के अतिरिक्त कोई भी सम अवस्था में नहीं रह सका।

यह उनके परिवार की ही नहीं हम सब की भी स्थिति है। ज़रा सी बात से मन चंचल हो उठता है। हम राग–द्वेष में फँस जाते हैं, अहंकार की अग्नि में जल उठते हैं। हम चाहते हैं कि आज ही हमें भगवान राम के दर्शन हो जायें, किन्तु ऐसा तभी हो सकता है जब आप भगवान राम का ही रूप बन जायें–

''तू तू करता तू भया, मुझमें रही न हूँ।
आपा फिरका मिट गया, जित देखूँ तित तू।।''

अपने अहंकार को छोड़ दें। केवल आत्म स्थिति में रहें। परमात्मा की चरण रज बन जायें। बाकी सब बातों का परित्याग करना चाहिए। हम सब मन की पूजा करते हैं, अपनी इच्छाओं और आशाओं को बढ़ाते जाते हैं। उन्हें खत्म करना है, रोकना है।

आगे चलकर भगवान राम की और भी लीलायें हुई हैं। लक्ष्मण जी ने क्रोध में आकर सूपणखा की नाक काट ली, यह सम अवस्था नहीं है। लक्ष्मण जी भगवान राम के चरणों में रहते थे किन्तु राम जी की या वशिष्ठ जी की स्थिति उनमें नहीं आयी। आगे चलकर सीता जी का अपहरण हुआ। रावण साधु के वेश में आया और भिक्षा माँगने लगा। हमारे यहाँ की संस्कृति है कि कोई भी भिखारी द्वार पर आ जाये उसे खाली हाथ नहीं जाने देते। सीता जी भी स्वभाववश, नीतिवश, धर्मवश बाहर आयीं। रावण कहता है ''नहीं, यह जो रेखा बनी है उसके बाहर आकर भिक्षा दो। घर के भीतर से दान नहीं देना, देना है तो घर के बाहर आकर दो।'' वह धर्म था। वे रावण को पहचान नहीं पाईं और बाहर आईं, रावण उन्हें उठाकर ले गया। राम वापस आये, सीता जी को न पाकर भी वे सम अवस्था में ही रहे।

आप भी यदि साधना की शिखर अवस्था को प्राप्त करना चाहते हैं तो सम अवस्था में रहने का अभ्यास करना होगा। दुःख–सुख दोनों में एक सा रहना होगा। अनुकूल–प्रतिकूल अवस्थायें दिन में कई बार आती हैं। हम विक्षिप्त हो जाते हैं, रात को नींद नहीं आती है। यह हमारी साधना नहीं है। यह हमारी गिरावट की निशानी है।

आज भगवान राम का अवतार दिन है, इसे बड़े उत्साह से मनाना चाहिए। रामायण का पाठ करना चाहिए, विशेषकर सुन्दरकाण्ड का पाठ करना चाहिए। भगवान राम के गुणों को याद करना चाहिए। आज के दिन आप सब भी दृढ़ संकल्प लें कि हम दुःख-सुख दोनों में सम अवस्था में रहने का अभ्यास करेंगे। यह कहने से ही नहीं होगा। इसमें बहुत समय लगेगा। एक आयु ही नहीं कई आयु लग सकती हैं। परन्तु यह बात रोज़ साधना में बैठने से पहले दुहरायें कि मैं सारे दिन सम अवस्था में रहने का प्रयास करूँगा।

सच्चा सुख सम अवस्था में रहने से होता है। कितनी भी पाठ पूजा कर लें, यदि सम अवस्था नहीं आयी तो कुछ नहीं होगा।

''ब्रह्मज्ञानी सदा निर्लेप, जैसे जल में कमल अलेप।''

जिसको ब्रह्म ज्ञान हो गया, उसे भलाई-बुराई नहीं छू सकती। कीचड़ में कमल का पुष्प कितना सुन्दर दिखता है। कमल कीचड़ में खिलता है किन्तु उसे देखकर सब खिल उठते हैं। ऐसे ही हम भी ज्ञानियों की सेवा में बैठें, जो अंतर में ब्रह्म ज्ञान प्राप्त कर चुके हैं। उनके भीतर से जो रश्मियाँ आती हैं, वह आत्म प्रसादी उनसे लें। यही साधना है। हमारे यहाँ की ही नहीं सभी की साधना यही है। किन्तु यह रास्ता अत्यन्त कठिन है।

गुरु महाराज कहा करते थे कि शाम के समय कुछ मिनट स्वनिरिक्षण में लगाना चाहिए, यह विचार करना चाहिए कि आज मुझसे कौन सी अच्छी व कौन सी बुरी बातें हुई हैं। बुरी बातों को दूर करने के लिये दृढ़ संकल्प लेना चाहिए, व्रत रखना चाहिए। किन्तु हम ऐसा कर नहीं पाते हैं। दुःख-सुख में, द्वन्दों में फँस जाते हैं। मुख्य द्वन्द राग-द्वेष का है।

भगवान राम को देखिए। रावण ने कितना अत्याचार किया किन्तु जब रावण मृत्यु शैया पर पड़ा था तो उन्होंने भाई लक्ष्मण को कहा 'जाओ उस ब्रह्म ज्ञानी से शिक्षा लो'। लक्ष्मण जी कहते हैं, 'भाई आप क्या बात करते हैं।उसने हम पर कितना अत्याचार किया है, भाभी

सीता को एक वर्ष तक अपनी कैद में रखा। आप कह रहे हैं कि मैं उसके पास जाकर धर्म की शिक्षा माँगू, यह मुझसे नहीं होगा।' भगवान राम कहते हैं 'आपको बड़े भाई की आज्ञा का पालन करना चाहिए, यह हमारा धर्म है।'लक्ष्मण जी ने उनकी बात मान तो ली किन्तु मन से नहीं मानी। वह जाकर रावण के सिर के पास खड़े हो गये। रावण चुप रहा, कुछ नहीं बोला। लक्ष्मण जी वापस आ गये। रामचन्द्र जी ने पूछा 'शिक्षा ले आये'।लक्ष्मण बोले 'मैं तो वहाँ खड़ा रहा वह कुछ बोला ही नहीं'।राम ने पूछा 'कहाँ खड़े हुए थे।' कहा 'सिर के पास'।राम बोले 'वह तो अहंकारी था ही, तुम तो उससे भी ज्यादा अहंकारी निकले। चलो, मेरे साथ चलो।' हनुमान जो सच्चे सेवक थे, सब सुन रहे थे। उनकी आँखों से प्रेमाश्रु बहने लगे।वे भगवान से कहते हैं 'भगवान, आप यह क्या कह रहे हैं। आपकी बात समझ में नहीं आ रही है।' शत्रु और मित्र में भेद न देखना, यह सबको नहीं आता।भगवान हनुमान से कहते हैं, 'और परिपक्व बनो। अभी तुममें परिपक्वता नहीं आयी है, समता नहीं आयी है।' राम लक्ष्मण को लेकर रावण के पास गये और उसके चरणों के समीप खड़े होकर करबद्ध प्रार्थना की 'इस बच्चे से भूल हो गई है, आप इसे क्षमा कर दें। आप इसे विद्या प्रदान कीजिए।' तब रावण ने लक्ष्मण को शिक्षा दी। क्या हम लोग ऐसा कर सकते हैं ?

मैं आपसे दुबारा अनुरोध करूँगा कि रामायण का पाठ करिये विशेषकर सुन्दरकाण्ड का। रामायण को एक कहानी की पुस्तक मत समझें। वशिष्ठ जी की पुस्तक 'वशिष्ठ योग' भी बड़ी ऊँची पुस्तक है। वह पढ़नी चाहिए।

भगवान राम के जीवन का अनुसरण करने का प्रयास करें। दो–चार बार पढ़ना ही काफी नहीं, उन्हें अपने जीवन में उतारने कर प्रयास करें। पूज्य गुरुदेव आपको शक्ति दें। ओउम शान्ति।

❑❑❑❑

*प्राचीन मुस्लिम संतों के जीवन चरित्र*

# अबु–मुर्त्ताज़

तपस्वी अबु–मुर्त्ताज़ अपने प्रभु–प्रेम और वैराग्य के कारण प्रसिद्ध हो गये थे। उन्होंने कई बार अकेले देश–भ्रमण किया था। नशापुर में वे रहते थे। उनके सहवासी थे तपस्वी अबुउस्मान और जवनिद। तपस्वी अबु हाफ़िज़ का दर्शन लाभ भी उन्हें हुआ था। शोनजीरा नामक स्थान में वे बहुत समय तक रहे थे। उनकी मृत्यु बगदाद में हुई थी।

उन्होंने कहा है कि ''मैंने तेरह वर्ष तक तीर्थ–भ्रमण किया, किन्तु मुझे ऐसा मालुम देता है कि मेरे वे भ्रमण सांसारिक भावना से ही हुए थे। इसका कारण यह है कि एक बार मेरी माता ने जब मुझसे पानी माँगा तो मुझे वह सेवा भी भार–रूप मालूम दी। मैं इससे अनुमान करता हूँ कि तीर्थ–यात्रा से मेरी लेशमात्र भी उन्नति नहीं हुई।''

अबु मुर्त्ताज़ एक बार बगदाद शहर में से जा रहे थे। प्यास लगने पर उन्होंने एक धनवान के घर पर पानी माँगा। गृहस्थ की पुत्री जलपात्र लेकर बाहर आई। मुर्त्ताज़ कन्या का रूप लावण्य देखकर मुग्ध हो गये। बहुत समय बीत जाने पर घर के मालिक के प्रश्न करने पर उन्होंने उत्तर दिया – ''भद्रजन, तुम्हारे घर से मुझे पानी तो मिला है पर पानी पिलाने वाली ने मेरा मन चुरा लिया है।

गृहस्वामी बहुत ही सहृदय था। वह महर्षि मुर्त्ताज़ को पहचान गया। उसने कहा– ''महात्मन् वह कन्या मेरी पुत्री है। आपकी उसके पाणिग्रहण की भी अभिलाषा हो तो मैं प्रसन्नतापूर्वक उसे आपके चरणों में अर्पित करूँगा।

मुर्त्ताज़ ने कहा – ''हाँ मेरी ऐसी इच्छा है।''

गृहस्वामी ने अपने कुटुम्बीजनों को एकत्रित करके बड़ी धूमधाम से विवाह की तैयारी की। रिवाज के मुताबिक नौकर मुर्त्ताज़ को स्नानगृह में ले गये, उन्हें बहुमूल्य वस्त्राभूषण पहनाये। वधू के साथ वे अन्तःपुर में गए। वैवाहिक क्रिया के आरम्भ में उपासना करते ही वे उच्च–स्वर से बोल उठे – अरे, जल्दी मेरी कफनी उठा लाओ। इतना कह उन्होंने वे कीमती वस्त्राभूषण निकाल फेंके और पुनः अपनी कफनी पहनकर वे वहाँ से चल दिये।

ऐसा करने का कारण पूछने पर उन्होंने बताया – 'उपासना के समय मुझे एक अर्न्तध्वनि सुनाई दी' – ''अरे त्यागी मेरी इच्छा के विरुद्ध जाकर तूने एक कन्या पर दृष्टिपात किया, उसके दण्ड स्वरूप ही तो तेरी त्याग कफनी दूर हुई है, किन्तु अब भी नहीं चेतेगा तो याद रख कि तेरा आन्तरिक धर्मवस्त्र भी छिन जायेगा।''

एक बार एक व्यक्ति ने उनसे कहा – 'अमुक व्यक्ति तो पानी पर चल और आकाश में उड़ सकता है।' मुर्त्ताज़ ने उत्तर किया – 'इसमें कौन सी महत्व की बात है। जलचारी और आकाशविहारी से इन्द्रियों को वश में रखने वाला अधिक श्रेष्ठ है।'

## उपदेश वचन

1. मेरा धर्माचरण मुझे नरक के दुःखों से बचाकर स्वर्ग में ले जाये, ऐसी इच्छा करने वाला निर्भय नहीं। किन्तु ईश्वर पर जो विश्वास रखकर उनकी प्रीति के लिए ही धर्माचरण करता है, वही निर्भय है, और उसे ही प्रभु अपनी सेवा में लेते हैं।
2. किस उपाय से प्रभु–कृपा प्राप्त हो? इस संसार और बाह्य जीवन में आसक्ति जो प्रभु प्रेम में बाधक हैं उन्हें छोड़ दे।
3. लौकिक भोगों से विमुखता, ईश्वर की आज्ञा का पालन और ईश्वरेच्छा से जो कुछ हो जाये उसी में प्रसन्नता मानना सच्ची प्रभु भक्ति के लक्षण हैं।

4. ईश्वर के मार्ग में विरोधक वस्तुओं पर आसक्त होना और प्रकृति की सजा भोगने की तैयारी करना एक समान है।
5. व्यवहार को शुद्ध रखने के दो उपाय हैं – धीरज और प्रेम।
6. साधुजनों के लिए भी सत्संग श्रेयस्कर है। जो सत्संग से दूर रहता है वह रोग रहित नहीं।
7. एक बार उपदेश करते समय उन्होंने अपने श्रोताओं से कहा था – 'तुमको मुझसे उत्तम मनुष्य के पास जाना चाहिए और मुझे लोगों से उत्तम मनुष्य के पास जाना चाहिए।'

❑❑❑❑

# अबु अली मुहम्मद

तपस्वी अबु अली मुहम्मद नशापुर की एक छोटी सी मसजिद के धर्मोपदेशक थे। तपस्वी अबु हाफ़िज और हमहुज के समागम का उन्हें लाभ मिला था। व्यवहार तथा परमार्थ ज्ञान में वे पारंगत थे। वे तत्कालीन लोक–नीति और धर्मशास्त्र के मुख्य ज्ञाता माने जाते थे। प्रभु प्राप्ति के निमित्त सब कुछ छोड़कर वैराग्य धारण कर वे तत्व ज्ञान के अभ्यास में निमग्न हो गये। अन्त में सूफी मण्डल में सम्मिलित होकर उन्होंने धर्म प्रचार किया। वे जैसे पण्डित थे वैसे ही सरस वक्ता भी थे।

उनका एक पड़ोसी पत्थर मार–मारकर पक्षियों को उड़ाता रहता। एक दिन उनका मारा हुआ पत्थर तपस्वी अली मुहम्मद को आकर लगा, जिससे उनके माथे में से रक्त बहने लगा। तपस्वी के एक भक्त ने उस पड़ोसी पर मुकदमा चला दिया। किन्तु तपस्वी ने मुकदमा वापस ले लिया और अपने पड़ोसी के पास एक लकड़ी भेजकर कहलाया – 'पत्थरों से न मारकर भविष्य में पक्षियों को इस लकड़ी से उड़ा दिया करना।'

अबु अली ने एक दिन देखा कि तीन मनुष्य और एक स्त्री एक मुर्दे को कंधे पर उठाकर लिये जा रहे हैं। स्त्री को मुर्दा उठाते देखकर

उन्हें आश्चर्य हुआ। स्त्री को अलग कर उन्होंने स्वयं मुर्दे को कंधा दिया। प्रार्थनादि के साथ विधिपूर्वक मुर्दे को दफनाने के बाद उन्होंने उन तीन आदमियों से पूछा– 'मुर्दा उठाने के लिए चौथा आदमी नहीं मिला ? बेचारी स्त्री को कष्ट उठाना पड़ा।' उन्होंने उत्तर दिया– 'मृत्त व्यक्ति नपुंसक था इसलिए सब उससे घृणा करते थे। कोई उसके शव को उठाने के लिए तैयार न हुआ', यह सब सुनकर ऋषि का मन मृतक के आश्रितों के प्रति दयार्द्र हो गया ओर उन्होंने अपने पास से उनकी सहायता की।

तपस्वी अबु अली सन् 328 हिजरी में नशापुर में परलोक वासी हुए।

## उपदेश वचन

1. मनुष्य चाहे कितने शास्त्र सीखे, किन्तु जब तक वह सद्गुरु की देखरेख और सेवा में रहकर आत्मशासन नहीं सीखता, तब तक उसका वास्तविक मनुष्यत्व विकसित नहीं होने पाता।
2. जो मनुष्य साधुजनों की कथा, कीर्तन व उपदेश सुनता है, पर उनके सम्मान व सेवा की ओर ध्यान नहीं रखता, उसे सत्संग व साधु–दर्शन का वास्तविक लाभ भी नहीं मिलता और वह साधुजनों की कृपा से भी वंचित रह जाता है।
3. सच्ची प्रभु भक्ति और सत्यपरायणता सब शुभ कार्यों और साधनाओं की मूल है। शुद्ध प्रेम से ही शुद्ध धर्मानुष्ठान संभव है। जिसकी जड़ शुद्ध नहीं है, उसके डाल, पात व फल कैसे शुद्ध हो सकते हैं।

●●●

# अबुल अब्बास नहाओन्दी

तपस्वी अबुल अब्बास महाज्ञानी और वैरागी थे। उन्होंने कहा है– 'मेरी साधना के प्रारम्भिक बारह वर्षों तक मैं सिर झुकाये रहता। इससे मुझे

बहुत कुछ तत्वज्ञान हुआ। कई लोग ईश्वर–दर्शन व प्रभु को अपना बनाने की इच्छा रखते हैं। मेरी तो यही आकांक्षा थी कि ईश्वर मुझे ऐसे थोड़े से क्षण तो दे जब मैं परमात्मा–दर्शन कर सकूँ – अर्थात् मैं यह स्पष्ट जान सकूँ कि मैं कौन हूँ? कैसा हूँ? और कौन हूँ?

तपस्वी अब्बास टोपी सीकर जीवन–निर्वाह करते थे। वे एक टोपी की मेहनत के दो पैसे लेते, जिसमें से एक पैसा भिखारी को दे देते और दूसरा पैसा खाकर पूरा करने पर ही नई टोपी का काम हाथ में लेते।

इस महात्मा का एक धनवान शिष्य था। अपने धन में से वह कुछ अंश अलग करता जाता। उस अंश को किसे दान दे ? इस विषय में उसने प्रश्न किया। उन्होंने कहा– 'किसी सत्पात्र को'। गुरु के यहाँ से लौटते ही उसे मार्ग में एक निर्धन अन्धा मिला। उसे उचित पात्र समझकर उसने एक स्वर्ण मुद्रा दान में दी।

दूसरे ही दिन उसने सुना कि वह अन्धा एक दूसरे अंधे से कह रहा था– 'कल एक आदमी मुझे मोहर दे गया, मैंने उससे खूब शराब पी और वेश्या के साथ मौज की।'

यह सुनकर उस धनवान को बहुत खेद हुआ। उसने वह हकीकत गुरु को सुनाई। गुरु ने उसके हाथ में एक पैसा देकर कहा– 'जा, पहले पहल जो आदमी मिले उसी को यह पैसा दे देना।' यह पैसा गुरु ने अपनी टोपी बेचकर प्राप्त किया था।

सबसे पहले मिलने वाले को उसने वह पैसा दिया और स्वयं उसके पीछे हो लिया। उसने एक निर्जन स्थान में जाकर अपनी झोली में छिपे हुए एक मरे हुए पक्षी को निकालकर फेंक दिया, आगे बढ़कर शिष्य ने इसका कारण पूछा तो उसने उत्तर दिया– 'आज सात दिन से मेरा कुटुम्ब निराहार दिन बिता रहा है। भिक्षावृत्ति मुझे पसंद नहीं इसलिए निरुपाय होकर मैंने भूख बुझाने के लिए यह मरा हुआ पक्षी ही उठा लिया था।

रास्ते में आपने मुझे एक पैसा दे दिया। अब मुझे उस पक्षी की ज़रूरत नहीं रही।

शिष्य ने इस आश्चर्य भरी बात का गुरुजी के आगे उल्लेख किया। गुरुजी ने बताया– 'निश्चय ही तूने वह धन अत्याचारी और दुराचारियों की सहायता से प्राप्त किया है। इसलिए तेरे धन के दान का दुरुपयोग हुआ। न्यायपूर्वक मिले हुए मेरे एक पैसे ने एक गरीब को निषिद्ध भोजन से बचा लिया, इसमें नई बात क्या ?'

एक दिन एक नास्तिक कफनी पहनकर परीक्षा लेने के लिए एक दूसरे तपस्वी अबुल अब्बास कस्सार की झोपड़ी में गया। वे उग्र स्वभाव वाले थे। देखते ही वे उसे पहचान गये और बोले– 'अरे नास्तिक! तेरा यहाँ क्या प्रयोजन ?' वहाँ अपनी दाल गलती न देखकर वह नास्तिक अब्बास नहाओन्दी के यहाँ आया। वे उसे पहचान तो गये पर कुछ न बोले। वहाँ वह चार मास तक रहा। कपट भाव से वह रोज सबके साथ वजू करता और नमाज पढ़ता। एक दिन तपस्वी अब्बास नहाओन्दी ने उससे कहा– 'आपका यहाँ के अन्न जल के साथ सम्बन्ध हो गया है, अब यहाँ से आप मेरे प्रति विरोध भाव लेकर जायें तो यह अनुचित होगा।'

वह नास्तिक ईश्वर में विश्वास कर और महात्मा की संगति में रहकर साधना करने लगा। वह एक सिद्ध पुरुष हुआ और नहाओन्दी के परलोक गमन पर उसने उनका स्थान ग्रहण किया।

## उपदेश वचन

1. अहम्मन्यता–ममत्व को दबाकर सबके साथ बंधुत्व स्थापित करना एक ऋषि का काम है।
2. पहले धर्म ज्ञान प्राप्त करो और पीछे और कुछ।

❑❑❑❑

# अभ्यास में मन न लगने के कारण और उपाय

## मन की तरंगों पर रोक कैसे लगायें

अब प्रश्न यह उठता है कि मन की संसारी तरंगों को रोका कैसे जाय ? मन की तो यह आदत जन्म–जन्मान्तर से पड़ी हुई है कि हर समय विषय चिन्तन में लगा रहता है, संसारी बातें ही सोचा करता है। सोते जागते वह अपनी सही चाल चलता रहता है। यह स्थिति उन लोगों की है जो निपट संसारी हैं। इसके विपरीत जिन्होंने सत्गुरु के श्री चरणों का आश्रय ग्रहण किया है और उनसे नाम लिया है, यानी दीक्षा ली है, उनमें और निपट संसारियों में कुछ भेद अवश्य है। सत्गुरु के सत्संग से और नाम के सुमिरन तथा अन्तर में ध्यान करने से अभ्यासी में ऐसी योग्यता स्वतः आ जाती है कि वह अपने मन की चाल पर निगाह रख सके। इस काम में सत्गुरु से सहायता माँगें, जब–जब सांसारिक हिलोरें मन में उठती हुई दिखाई पड़े, जब–जब मन की चाल बर्हिमुखी हो, तुरन्त चौकन्ना हो जाय और अपनी सुरत और ध्यान को ऊपर की तरफ जोड़ दें– अर्थात् जिस स्वरूप का ध्यान करने को बताया गया है वही ध्यान करने लगें, या जिस नाम का सुमिरन करने को बताया गया है, वह ध्यान करने लगें। ऐसा करने से उसके मन की धार का प्रवाह इन्द्रियों की ओर न जाकर ऊपर की ओर जुड़ जायेगा और प्रभु प्रेम का रस पाकर (चाहे वह किनकी मात्र ही क्यों न हो) मन का बहाव संसार की ओर होने से बच जायेगा।

नाम के स्मरण का रस तथा स्वरूप के ध्यान का रस जिस विधि से गुरु ने बताया हो अभ्यास करके प्राप्त करना चाहिए। अभ्यासी को चाहिए कि शब्द की धार को पकड़ने का प्रयत्न करें। जैसे–जैसे शब्द का रस अधिक मिलेगा तो वह धार इसी तरह से बढ़ती जायेगी और जितनी देर धार इस स्थान पर ठहरेगी जहाँ वह शब्द हो रहा है उतनी देर वह खूब रस देगी। इस तरह अभ्यास करने से मन की चाल दुनियां की तरफ को तथा इन्द्रियों की ओर को कम होती जायेगी और ऊपर को चढ़ाई करने में आसानी होगी।

## मन को अर्न्तमुखी करने के उपाय

सन्त मत के अभ्यासियों को चाहिए कि अभ्यास के लिये विशेष समय निश्चित कर लें। उस समय के लिये कोई काम न उठाकर रखें। जब अभ्यास करने बैठें उस समय संसार तथा उसके पदार्थों का ख्याल मन में न आने दें। अपना ध्यान गुरु के बताये हुए अभ्यास में या गुरु चरणों में लगावें। ऐसा करने से ध्यान और भजन में कुछ रस अवश्य मिलेगा अन्यथा मन दुनियां के ख्यालों में लगा रहेगा और अभ्यास का कोई लाभ नहीं होगा। ऐसा तो संभव नहीं कि मन जो जन्म जन्मान्तर से दुनियां तथा उसके विषय सुख का अभ्यस्त है, अपना काम एकदम बंद कर दे या एकदम उधर से हट कर ईश्वरोन्मुखी हो जाय। आदत के वश वह संसारी भोगों की तरंगें भजन के समय भी उठायेगा, किन्तु अभ्यासी को चाहिए कि उसी समय उसको रोके। उसको संसारी ख्यालों से ऊँचा आनन्द दे, जिससे वह संसारी विचारों के घटिया आनन्द को छोड़ देगा। इसका आशय यह है कि उसे गुरु स्वरूप के ध्यान में या शब्द या प्रकाश के ध्यान में (जैसा जिसको बताया गया हो) लगावें, जिसका प्रभाव यह होगा कि ध्यान लगाने में आसानी हो जायेगी। जब दुनियां के ख्याल हट जावें तब शब्द की ध्वनि सुनने में लग जायें। यदि बार–बार वही ख्याल पैदा हों और ध्यान के समय भी दुनियां की गुनावन दूर न हो तो ध्यान के साथ–साथ नाम का सुमिरन भी करें। यदि यह युक्ति भी काम न दे तो कोई भजन इत्यादि जिसमें प्रभु का प्रेम और विरह भरा हुआ हो और जो मन को प्यारा लगता हो उसे मन ही मन में गाकर पाठ करें और अभ्यास में लग जायें। जब मन इस काम में लग जायेगा तो दुनियां की गुनावन छोड़ देगा। जब मन में थोड़ा बहुत प्रभु प्रेम का प्रवाह होने लगेगा, उस समय शब्द की ध्वनि भी स्पष्ट होती जायेगी और अभ्यास में रस मिलने लगेगा। मन पूजा, ध्यान और भजन के समय संसारी तरंगें उठाया करता है और उसमें विध्न पैदा करता है क्योंकि यह उस की आदत पड़ी हुई है। ऐसे वक्त में भी, यानी पूजा के अलावा और समय में भी मन की सांसारिक तरंगों पर चौकसी रखें और उन्हें रोकने के लिए

अंदर गुरु स्वरूप का ख्याल करें। अपनी सुरत को उन सांसारिक विचारों और तरंगों से ऊपर उठाकर ऊँचे चक्रों (सहस्रदल कंवल या त्रिकुटी) की ओर फेरे। ऐसा करने से वे हिलोरें या तो बंद हो जायेगी या उनका वेग कम हो जायेगा।

## मन और उसकी चाल की चौकसी करें

सन्त मत के अभ्यासियों को अपने मन और उसकी चाल पर हर समय दृष्टि रखनी चाहिए और इस बात की चौकसी रखनी चाहिए कि वह बेकार की बातों की तरफ न जाये और ऐसे कामों का ख्याल न उठावे जो परमार्थ की राह में बाधा डालते हों। यदि वह ऐसी चौकसी करेगा तभी उससे आन्तरिक अभ्यास बन पड़ेगा अन्यथा उसको यह पता भी नहीं चलेगा कि उसके मन और इन्द्रियां किन-किन बातों में और कौन-कौन सी सांसारिक कामनाओं में भरम रहे हैं। साधारणतया यह दशा संसारी मनुष्यों की होती है और ऐसी दशा परमार्थी मनुष्य की भी हो गई तो यह समझना चाहिए कि अभी उसके संसारी स्वभाव का वेग मौजूद है।

अतः अभ्यासियों के लिए यह आवश्यक है कि अपने मन और इन्द्रियों की बहिर्मुखी धार को रोकते रहें और ऊपर की ओर चढ़ाई करने की आदत डालें। कुछ दिनों के अभ्यास और सत्गुरु की कृपा से यह आदत पक्की हो जायेगी।

## मन में निराशा न लायें

संतमत के जो अभ्यासी नियम पूर्वक प्रतिदिन सुमिरन, ध्यान और सुरत शब्द का अभ्यास करते हैं उनको आन्तरिक आनन्द का अनुभव होने लगता है और उनका चित्त प्रसन्न रहता है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि शब्द नहीं सुनाई देता या ध्यान में कुछ रस नहीं आता और यदि आता भी है तो कम आता है। ऐसी स्थिति में अभ्यासी लोग अपने चित्त में दुखी होते हैं और कोई-कोई निराश होने लगते हैं, जिसके फलस्वरूप वे अभ्यास में ढील डाल देते हैं और सुस्त हो जाते हैं। सच तो यह है कि दोनों स्थितियाँ सच्चे अभ्यासी को सत्गुरु की मौज और दया से प्राप्त

होती हैं। जिस स्थिति में ध्यान और भजन में रस व आनन्द मिलता है वह मालिक और संत सत्गुरु की प्रत्यक्ष दया और कृपा है। परन्तु जिस स्थिति में ध्यान व भजन में रस नहीं मिलता अथवा कम मिलता है उसमें भी मालिक की अप्रत्यक्ष दया और कृपा मौजूद है। अभ्यासी अपनी अज्ञानता से घबरा जाता है और सोचने लगता है कि किसी कारण से मेरे सत्गुरु मुझसे रूठ गये हैं जिसके कारण उनकी जो दया मुझ पर हो रही थी वह खिंच गई है और जो आनन्द मुझे ध्यान में मिलता था वह रुक गया है। ऐसा विचार मन में नहीं लाना चाहिए। सत्गुरु के समान दयालु और कृपालु दूसरा कौन हो सकता है।

## ध्यान और भजन में रस तथा आनन्द न मिलने या कम हो जाने के कारण एवं उपाय

1 **पहला कारण है कुसंग का प्रभाव।** यह प्रभाव दुर्जनों निपट संसारियों और निन्दकों के संग से होता है। ऐसे लोग परमार्थ के विरोधी होते हैं तथा परमार्थी की हंसी उड़ाते हैं, उसको ताने मारते हैं और सन्तमत की निन्दा करते हैं। इन बातों को सुनकर अभ्यासी के मन में भ्रम पैदा हो जाता है और ईश्वर के प्रति प्रेम के स्थान पर रूखापन और फीकापन पैदा हो जाता है।

**उपायः–** कुसंग का प्रभाव इसलिए शीघ्र होता है कि साधक की भक्ति में अभी कच्चापन है। वह सत्गुरु के वचनों को ध्यान देकर सुनता तथा उन्हें याद नहीं रखता। उन्हें समझने की कोशिश भी नहीं करता। उसे यह चाहिए कि सत्गुरु के वचनों पर ध्यानपूर्वक विचार करे, भक्ति की रीति पर ध्यान दें और निन्दक की बातों को अपने हृदय से दूर करें। इसके साथ–साथ ऐसी बातें कहने वालों को अज्ञानी और विरोधी समझें तथा अपने भाग्य को सराहें कि मैंने सत्गुरु की शरण ग्रहण की है तथा और अधिक लगन से अभ्यास में लग जायें।

यदि वह अपने को निर्बल पाता है, पुरुषार्थ करता है किन्तु दृढ़ता पूर्वक नहीं कर पाता तो उसके लिए यह आवश्यक है कि भक्ति पूर्ण पुस्तकों

अथवा संतों के प्रवचनों का अध्ययन करे। इसके साथ–साथ अपनी दशा को अपने से बड़े या बराबर के सत्संगी (जो पुराने अभ्यासी हों और इन कठिनाईयों से गुजर चुके हों) के सम्मुख रखे और उनसे सहायता लेकर अपने भ्रम का निवारण कराये।

इसके साथ–साथ सबसे सरल और उत्तम उपाय यह है कि सम्पूर्ण रूप से अपने आपको मालिक या संत सत्गुरु के चरणों में समर्पण करके (चाहे वह थोड़ी देर के लिए क्यों न हो) सम्पूर्ण लगन से दया के लिए प्रार्थना करें, रोयें और गिड़गिड़ायें। अवश्य दया बरसेगी और कठिनाई दूर हो जायेगी।

2. **दूसरा कारण भी संगत का ही प्रभाव कहा जायेगा।** जगह–जगह की सैर, मेले तमाशे, संसार का ओर आकृष्ट करने वाले दृश्य धनवानों ओर उच्च अधिकारियों की संगति से अभ्यासी के मन में संसार के भोग पदार्थों की इच्छा व्यापक होने लगती है, बड़े–बड़े पद तथा यश प्राप्त करने की इच्डा बलवती होती है। इस प्रकार की इच्छा की पूर्ति न होने पर अभ्यासी का मन सुस्त हो जाता है। इसके अतिरिक्त यदि आवश्यकता से अधिक संसार के भोग विलासों में लिप्त हो जायें (जिसे अनुचित व्यवहार कहा जा सकता है) औरों का हाल सुनकर या पढ़कर अभ्यासी के मन में किसी विशेष प्रकार के भोगों की तीव्र अभिलाषा पैदा हो तो ऐसी दशा में भी वह सुस्त और दुखी हो जाता है। ऐसी स्थिति में अभ्यासी को भजन और ध्यान का रस व आनन्द बिल्कुल नहीं आता। उसका चित्त चलायमान हो जाता है और वह परेशान हो जाता है।

**उपायः–** इस स्थिति में पहले मनन से काम लें। महापुरुषों की वाणी, जिसमें माया और संसार के भोग विलासों से मन को सावधान करने का वर्णन हो, चित्त देकर पढ़ें और उस पर गहराई से विचार करें। अपने मन को उन्हीं वचनों की याद दिला–दिला कर समझावें कि बेकार की चाहें उठा कर और उन्हें पूरा करने की चेष्टा के विचार बार–बार लाकर उदास होना अनुचित है। इससे कोई परमार्थिक लाभ नहीं होता बल्कि भगवान से दूरी

होती है। भजन के समय वे विचार विध्न डालते हैं। समस्त वस्तुओं का देने वाला वही भगवान है जो सारी सृष्टि का मालिक और रचयिता है। इसलिए मालिक से मालिक को ही माँगना चाहिए– ऐसा संतों ने कहा है। वह हमारा प्यारा पिता है, हम उसकी अज्ञानी संतान हैं। हमें नहीं मालूम कि कौन सी वस्तु लेकर हमारा भला होगा और कौन सी लेकर नुकसान। वह परम पिता हमें कदापि ऐसी वस्तु नहीं देगा जिससे हमारा अहित हो। अतः यदि मनचाही वस्तुऐं न प्राप्त हों तो उदास ओर दुःखी नहीं होना चाहिए क्योंकि मालिक ने इसी में हमारी भलाई छिपा रखी है।

यदि इस प्रकार के मनन से भी मन न माने और बार–बार वे ही चाहें उठावे, भोगों तथा उन्हीं के विचारों में भरमता रहे तो सत्संग करें तथा सत्गुरु की सेवा में उपस्थित होकर दीन भाव से अपने मन की स्थिति को निवेदन करें और जो कुछ वे अपने श्रीमुख से कहें उसे ध्यान देकर सुनें ओर कार्य रूप में परिणित करें।

जब मनन तथा सत्संग से ऐसी समझ आ जाये कि वृथा के भोग पदार्थों के विचार उठाना, उन्हीं में रमते रहना अपने परमार्थ की हानि करना है तो अपनी भूल पर पछतावें और भगवान से उसकी क्षमा के लिए सच्चे हृदय से प्रार्थना करें। अपनी सम्पूर्ण श्रद्धा और विश्वास और प्रेम के साथ दृढ़ निश्चय करके अभ्यास में लगें। ऐसा करने से प्रभु की दया और सत्गुरु की कृपा से शीघ्र दशा सुधर जायेगी और आंतरिक अभ्यास में रस तथा आनन्द अनुभव होने लगेगा।

3. **तीसरा कारण प्रारब्ध से सम्बन्धित है।** पिछले जन्मों के और वर्तमान जन्म के कर्मों के फलस्वरूप कोई रोग व्याधि अभ्यासी को स्वयं लग जाती है या उसके परिवार वाले अथवा घनिष्ठ सम्बंधी की व्याधि की चिंता के कारण उसके मन और सुरत ध्यान व भजन में भली–भांति नहीं लगते। उस समय वह घबरा जाता है और भगवान के चरणों में पुकार करता है कि हे मालिक इन व्याधियों से बचा। यदि उसकी प्रार्थना तुरन्त सुन ली

गई और उसकी व्याधि कट गई तो वह प्रसन्न होकर हृदय से प्रभु का धन्यवाद देता है और ध्यान व भजन और अधिक लगन से करता है। इसके विपरीत यदि उसकी प्रार्थना मालिक ने तुरन्त न सुनी तो वह अपने चित्त में दुःखी और उदास हो जाता है और मन में मालिक की ओर से रूखापन व फीकापन ले आता है।

**उपायः–** इस कारण का मूल प्रारब्ध से सम्बन्धित होता है, उसका निवारण बिना भोगे नहीं होता। जो व्याधि और कष्ट पिछले कर्मों के फलस्वरूप आते हैं, उन्हें भोगते समय यदि भजन और सुमिरन तथा सत्गुरु का ध्यान करके भोगा जाये तो कष्ट कम प्रतीत होता है। पूर्ण शरणागत होकर भगवान की दया साथ होती है। वह सूली को काँटा बना सकता है, मन भर कष्ट को सेर भर कर सकता है। जिन्होंने सत्गुरु की शरण ग्रहण की है उन्हें विश्वास रखना चाहिए कि उनके कर्म भोग भगवान की दया से सहज ही में कटते जायेंगे और जिन सम्बन्धियों को कष्ट में देखकर उन्हें चिंता होती है, उसमें प्रभु की दया से सहायता मिलती है और उन्हें भी दुख का आभास कम होता है। यह है सत्गुरु और भगवान की दया का अंग।

दूसरा अंग यह है कि कुछ दान पुण्य अधिक करें। गरीब मोहताज और भूखे नंगों की दुआ लें। भरसक अपनी हैसियत के अनुसार एक दो या अधिक गरीब स्त्री पुरुष या बालक को (जो वास्तव में भूखे हों) अपने सामने बैठाकर पेटभर स्वादिष्ट भोजन करावें। जैसे–जैसे वे प्रसन्न होकर खाते जावेंगे और उनकी तृप्ति होती जायेगी वे सच्चे हृदय से दुआ देंगे। यह दरिद्र नारायण की सेवा है। इस सेवा से प्रसन्नता और मानसिक बल प्राप्त होता है तथा उनकी दुआ से कुछ कष्ट भी कटता है।

कष्ट निवारण का तीसरा अंग यह है कि किसी योग्य वैद्य, हकीम या डॉक्टर से दवा भी करायें। भगवान का भरोसा रखकर औषधि का प्रयोग करें। दवा और दुआ साथ–साथ शीघ्र प्रभाव दिखाती है।

❑❑❑❑

# जीवन प्रभात

जीवन के हर प्रभात का स्वागत करिये। जीवन का हर प्रभात सच्चे मित्र की तरह, नित्य नूतन उपहार लेकर आता है। वह चाहता है कि आप वे उपहार ग्रहण करें और उस शुभ दिन का श्रृंगार करें। उसकी इच्छा रहती है कि जब दूसरे दिन वह आये तो आपका एक बढ़ा हुआ कदम देखे और उसके दिये उपहारों के ठीक उपयोग के साथ नये उपहार लेने के लिए प्रस्तुत पाये।

किन्तु जब आदरपूर्वक उठकर उत्साह से उसका स्वागत नहीं किया जाता है तो वह निराश होकर द्वार से लौट जाता है और दूसरे दिन में न उसको वह उत्साह रहता है और न उसके उपहारों में वह सौन्दर्य। बार–बार निराश होने पर वह आता तो है, पर अपरिचित राही की तरह द्वार के सामने से निकल जाता है।

ईश्वर मनुष्य को एक साथ इकठ्ठा जीवन न देकर क्षणों के रूप में देता है। एक नया क्षण देने के पूर्व वह पुराना क्षण वापस ले लेता है। अतएव मिले हुए प्रत्येक क्षण का ठीक–ठीक उपयोग करो जिससे नित्य नए क्षण मिलते रहें।

*– रवीन्द्रनाथ ठाकुर*

तुम अपना पिंडदान और श्राद्ध स्वयं ही करोगे तभी सद्गति प्राप्त होगी। पुत्र से नहीं, सद्गति तो अपने सत्कर्मों से प्राप्त होती है। शरीर को परोपकार एवं परमात्मा के काम में पूरी तरह से लगा देना ही सच्चा पिंडदान है।

⌘⌘⌘⌘

भावपूर्ण हृदय से जो प्रभु के सामने द्रवित होता है उसी को जीवन की शान्ति मिलती है। विवेक से थोड़ा सुख भी भोगो और जीवन व्यतीत करके भगवान के सानिध्य की प्राप्ति भी करो।

⌘⌘⌘⌘

मनुष्य चाहे अपना कर्त्तव्य चूक जाये, पर ईश्वर नहीं चूकते। ईश्वर की उपासना ऋद्धि के लिये नहीं, बल्कि हृदय की शुद्धि के लिये करो।

# भंडारों में शिष्टता (अदब) और सेवा–भाव

सत्संग समारोहों में शिष्टता का विशेष महत्व है। कोई व्यक्ति भले ही कितना भी पढ़ा लिखा विद्वान हो, यदि उसमें शिष्टता का व्यवहार रहन–सहन में नहीं है तो सब योग्यता व्यर्थ है। कैसी विडम्बना है कि ये अच्छे पढ़े लिखे आधुनिक विद्यार्थी अपने गुरुजनों से अभिवादन तक नहीं कर पाते हैं, आज्ञा पालन और सेवा भावना तो दूर की बात है।

सत्संग समारोहों में हमें कैसे अभिवादन करना है, कैसे बोलना है आदि शिष्टाचार, यह सब अपने बुर्जगों से सीखते आये हैं, जो बहुत ही लाभकारी है। भंडारों में तेज आवाज़ से बोलना, हँसी मज़ाक में ठहाके मारकर हँसना, बहुत अधिक बातें करना, बुर्जुगों की आज्ञा (आदेश) के बिना कोई काम करना या उनकी आज्ञा की अवहेलना करना आदि अनुचित है। राजनीति की गर्मामर्ग बहसें या फिल्म–तमाशों और टी.वी. की चटपटी घटिया मनोरंजक चर्चायें तो नितांत अवांछित एवं ग़लत हैं।

इन आध्यात्मिक सम्मेलनों में अदब और शिष्टाचार का एक आवश्यक पहलू और है कि हमें स्वयं सेवाभाव से कुछ न कुछ कार्य करके सहयोग देना चाहिए। वैसे तो सदैव कुछ विशेष कार्यकर्ताओं की टीम बड़े–बड़े उत्तरदायित्व सम्भालने हेतु योजनाबद्ध ढ़ंग से नियत होती ही है। सभी सत्संगियों का भी कर्त्तव्य है कि बिना बताये स्वयं आगे बढ़कर जो भी छोटा–छोटा काम, व्यवस्था को सहज एवं सुचारू बनाने में कर सकें वह करें, जैसे कि प्रसाद, जलपान, खानपान का वितरण, बढ़े–बूढ़ों को आराम से उठा–बैठा देना, तथा उनकी या बच्चों की ज़रूरतों को पूरा करना और बरतनों को यथास्थान पहुँचाना, कुर्सी या दरियों को ठीक–ठाक कर देना आदि।

समारोह में केवल सत्संग से प्रवाहित धारा से लाभ उठाने में लगे रहना चाहिए। हमें अपने किसी कार्य से, बातचीत से, उठने–बैठने, सोने इत्यादि से किसी को कोई विघ्न, बाधा अथवा कष्ट न पहुँचे यह ध्यान

रखना चाहिए। हमारा व्यवहार ऐसा हो कि हमें बुर्जुगों के समक्ष लज्जित न होना पड़े।

सभ्य, शिष्ट सदाचार आदि संस्कारों को हम अपने वरिष्ठ सत्संगी जनों से सीखें। हम अपने सत्संग के गुरुजनों तथा सद्ग्रन्थों से सीखें और भंडारों से लौटकर भी अपने जीवन में उनका व्यवहारिक अनुसरण करें। हमारे बुर्जुगों की अतिप्रिय नसीहत यही है–

''बेअदब, बेनसीब। बा अदब बानसीब।''

●●●

## खुदा की जगह मुद्रा का ध्यान

शेख बाबा फरीद अत्यंत विरक्त संत थे। धन संचय को वह अनर्थ की जड़ मानते थे तथा अपने पास धन संपत्ति कुछ नहीं रखते थे। एक दिन अरब देश का एक धनिक बाबा फरीद से आशीर्वाद लेने गया। बाबा ने उसे प्रेरणा दी, खुदा का नाम जपो तथा कमाई का ज्यादा से ज्यादा हिस्सा गरीबों की भलाई में लगाते रहो। किसी का दिल दुखाने वाला कोई काम कदापि न करो। इससे तुम्हें आत्मिक शांति मिलेगी और खुदा भी तुम पर अपनी रहमत रखेगा। शेख फरीद के चरणों में झुककर धनिक ने श्रद्धावश कुछ मुद्राएं रख दी। बाबा ने अपने शिष्य को आदेश दिया, इन सभी मुद्राओं को जरूरतमंदों में बांट दो। शिष्य ने मुद्राएं गरीबों में बांट दी। बांटते समय भूलवश एक मुद्रा जमीन पर गिर पड़ी। बाद में शिष्य की निगाह उस पर पड़ी, तो उसने उसे उठाकर अपने पास रख लिया कि अगले दिन किसी को दे देगा।

शेख फरीद शाम की नमाज अता करने बैठे, तो उन्हें मुद्रा का ध्यान आया। उन्होंने शिष्य को बुलाया, और पूछा सुबह मिली तमाम मुद्राएं बांट दी होंगी। उसने उन्हें बताया, एक मुद्रा जमीन पर गिर गई थी, वह अब भी मेरे पास है। यह सुनकर शेख फरीद ने कहा, उसे इसी वक्त किसी को दे आओ, तब सोना।

शिष्य ने आज्ञा का तत्काल पालन किया। वह मुद्रा किसी को देने के बाद ही बाबा फरीद ने नमाज अता की और उन्हें खुदा की अनुभूति हुई।

## राम संदेश के नियम

1. आध्यात्मिक विद्या के गुप्त और अनुभवी रहस्यों तथा सदाचार–शिक्षा को सरल भाषा में जनता तक पहुँचाना हमारी राम सन्देश पत्रिका का मुख्य उद्देश्य है।
2. राम–सन्देश में आत्मिक, नैतिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक उन्नति के लेख ही छपते हैं, राजनैतिक या रोमांचक लेख नहीं। रचनाओं में काट–छाँट करने अथवा छापने या न छापने की स्वतंत्रता सम्पादक को है।
3. राम सन्देश का वर्ष जनवरी में आरम्भ होता है। वार्षिक चन्दा 20 (बीस) रुपये है। एक वर्ष से कम तथा आजीवन ग्राहक नहीं बनाये जाते। चन्दा दशहरा भंडारों में या मैनेजर, राम संदेश को, 9–रामाकृष्णा कॉलोनी, जी. टी. रोड, ग़ाजियाबाद (उ.प्र.) 201009 के पते पर दिसम्बर के अंत तक अवश्य भिजवा दें।
4. राम सन्देश डाक द्वारा नहीं भेजा जाता है। इसका वितरण भंडारों पर ही किया जाता है। कृपया अपनी प्रति लेना न भूलें।

**राम संदेश**

**रजि. ऑफिस**

9 – रामाकृष्णा कॉलोनी, जी.टी. रोड,
गाज़ियाबाद – 201009

मुद्रक, प्रकाशक व संपादक : डॉ. शक्ति कुमार सक्सेना

*मुद्रण :* अंकोर पब्लिशर्स (प्रा.) लिमिटेड, बी–66, सैक्टर–6, नोएडा–201301